



## Research Article

Special Issue-|2020

## भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा: सुरेश सोनी

डॉ. राकेश सोनी

दर्शनशास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्यप्रदेश),

## Article History

Received: 15.10.2020

Accepted: 07.11.2020

Published: 16.11.2020

## Citation

Soni, R. (2020). भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा: सुरेश सोनी. *Indiana Journal of Multidisciplinary Research, Special Issue*, 1-7.

**Abstract:** श्रीमद्भगवत गीता के सातवें अध्याय को ज्ञान-विज्ञान योग के नाम से जाना जाता है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि ज्ञान और विज्ञान दोनों का ज्ञान होने पर ही मुझे अर्थात् ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान होता है। आगे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो संपूर्ण जगत में व्याप्त और सार रूप में स्थित जो चेतना है, उसका बोध ही ज्ञान है। यह द्रव्य स्वरूप है किंतु, मेरे स्वरूप का यह एक हिस्सा है। इसका विस्तार गुण युक्त जड़ प्रकृति के रूप में मेरे स्वरूप का दूसरा हिस्सा है। मेरे इस स्वरूप को जानना ही विज्ञान है। जब इन दोनों स्वरूपों को संयुक्त रूप से जान लिया जाता है तभी पूर्ण ज्ञान घटित होता है। गीता का यह श्लोक इस बात का प्रमाण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक यह है कि हमने आत्मज्ञान और विज्ञान को पृथक-पृथक न मानकर ज्ञान के एक ही स्रोत के दो रूप माने हैं। जितना हमने आध्यात्मिक ज्ञान की उचाईयों को स्पर्श किया है उतना ही वैज्ञानिक ज्ञान का भी विस्तार हमारे द्वारा किया गया है। कम से कम सैद्धांतिक स्तर पर प्रथम दृष्टया यह बात स्पष्ट और प्रामाणिक है। इसी क्रम में सांख्य दर्शन, वैशेषिक दर्शन और शैव दर्शन तो इसी तथ्य को पुष्ट करते हैं। चार्वाक दर्शन भले ही इस परंपरा से अलग हो किंतु, भौतिकवादी दृष्टिकोण से विज्ञान की परंपरा के प्रस्थान बिंदु के रूप में इसे भी हमने स्वीकारा है और चार्वाक को एक ऋषि के रूप में मान्यता दी गई है। बौद्ध और जैन परंपरा में भी विज्ञान का विस्तार देखा गया है और सैद्धांतिक अन्विति इनमें भी पायी जाती है। कुल मिलाकर सनातन की परंपरा में ज्ञान-विज्ञान, परा-अपरा और भौतिक-आध्यात्मिक परंपराओं को गाड़ी के दो पहिये के समान समांतर साथ-साथ विकसित मूल्यों के रूप में देखा जाता रहा है। किंतु, आधुनिक कालखंड में ज्ञान की साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी मानसिकता के चलते भारत की छवि दुनियाँ के सामने कुछ ऐसी प्रस्तुति की गई कि “भारत ने आध्यात्मिक ऊँचाइयों को तो छुआ है लेकिन विज्ञान, तकनीक, लोकतंत्र, प्रशासन, धर्म, नैतिकता, व्यवसाय, प्रबंधन आदि के मामले में उन्हें पश्चिम से सीखना चाहिये... और भारत में हमारी (पश्चिम) उपस्थिति इसीलिए है।” इस विचार को जाने-अनजाने वामपंथियों ने भी प्रोत्साहित किया। जहाँ तक लेनदेन का प्रश्न है तो दुनियाँ में ऐसा कोई समाज और संस्कृति नहीं है जिससे कुछ न कुछ लिया अथवा दिया गया न हो। लेना देना तो मनुष्य के विकास का अनिवार्य गुण है। जिस विज्ञान पर पश्चिम गर्व करता है, अनुसंधान बताते हैं कि मनुष्य के इतिहास में विश्व में ऐसा कोई समाज और संस्कृति नहीं है जहाँ वैज्ञानिक सोच और विज्ञान की कोई न कोई परंपरा न रही हो। मनुष्य का विकास ही आलोचनात्मक चिंतन से हुआ है। इसलिए विज्ञान की आधारभूत प्रवृत्तियाँ और परंपरा सभी समाजों में रही हैं। किंतु, भारत में मामला अन्य समाजों से थोड़ा भिन्न है। हमने आध्यात्मिकता और वैज्ञानिकता दोनों को साधा है।

**Keywords:** Indian Knowledge Tradition, Science and Spirituality, Ancient Indian Philosophy, Knowledge-Science Integration, Sanatan Intellectual Heritage, History of Science in India

Copyright © 2020 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY-NC 4.0).

प्रश्न यह है कि सैद्धांतिक तौर पर उक्त बातें सही होते हुए भी प्रमाण और तर्क के साथ दुनियाँ के सामने हम इसे कैसे प्रस्तुत करें? विज्ञान और वैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धांतों के मामले में फिर भी कुछ न कुछ सामग्री शास्त्रों में मिल जाते हैं लेकिन तकनीकी विकास को कैसे प्रस्तुत करें? यह एक बड़ा सवाल है। विशेषकर तब जब नालंदा के पुस्तकालय जलाये जाने से अधिकांश पुस्तकें नष्ट हो गयीं। कुछ विशिष्ट ज्ञान को गुप्त रखे जाने की परंपरा की वजह से या तो अब तक लोगों के सामने आ नहीं सके या समय के साथ वे ज्ञान लुप्त हो गये। रामायण काल से महाभारत काल तक और महाभारत काल से बुद्ध तक के काल खण्ड को समझने के लिये हमारे पास साहित्यिक-भाषिक स्रोत, वाचिक-कार्मिक-आध्यात्मिक परंपरा और कुछ पुरातात्विक साक्ष्य के अलावा कुछ ऐसा विशेष पुष्ट साक्ष्य नहीं है जिससे हम अपनी बात पूरे प्रामाणिकता के साथ कह सकें। जबकि रामायण और महाभारत दोनों कालखंडों में अनेकों वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों की चर्चा आती है। बुद्ध काल के पश्चात् जो इतिहास हमारे सामने उपलब्ध है, उसे भी उपनिवेशवादी दृष्टिकोण से देखने की वजह से सही चित्र उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। हालाँकि, स्थिति अब कुछ सुधार रही है।

ऐसी परिस्थिति में हमारे सामने साहित्यिक-भाषिक स्रोत, वाचिक-कार्मिक-आध्यात्मिक परंपरा और कुछ पुरातात्विक साक्ष्य को ही आधार मानकर भारत की प्राचीन वैज्ञानिक-तकनीक परंपरा और

उपलब्धियों को उसकी वास्तविक संदर्भ के साथ विश्व के सामने सही तस्वीर रखी जाये ताकि प्राथमिक आधार पर ही सही भारत की वैज्ञानिक समझ की सही तस्वीर प्रस्तुत की जा सके साथ ही इसके उच्च शोध अध्ययन के नये रास्ते भी खुल सकें। यद्यपि भारत के विज्ञान के इतिहास पर अलग-अलग क्षेत्रों में कुछ न कुछ लिखा गया है। किंतु, प्रत्येक क्षेत्र के प्राचीन वैज्ञानिक उपलब्धियों को एक ही जगह पर प्रस्तुत कर भारत की वास्तविक वैज्ञानिक प्रज्ञा को प्रस्तुत करने का अत्यंत प्रशंसनीय कार्य देश के प्रसिद्ध चिंतक एवं विचारक श्री सुरेश सोनी जी द्वारा “भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा” नामक पुस्तक में किया गया है।

पुस्तक इक्कीस अध्यायों में और प्रत्येक अध्याय के संदर्भ ग्रंथ सूची के साथ दो सौ चार पृष्ठों में लिखी गई है। प्रथम संस्करण 2003 में अर्चना प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुई। किंतु, अब तक कई संस्करण निकल चुके हैं जो कि इस पुस्तक की लोकप्रियता का प्रमाण है। इक्कीस अध्यायों में लिखी गई पुस्तक में विज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को समेटने की कोशिश कि गई है। अध्यायों के शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं- भारत अतीत और वर्तमान, पश्चिम और भारत में प्रयोगों के प्रति दृष्टि, विज्ञान-पश्चिम और भारतीय धारणा, विद्युत शास्त्र, मैकेनिक्स एवं यंत्र विज्ञान, धातु विज्ञान, विमान विद्या, नौका शास्त्र, वस्त्र उद्योग, गणित शास्त्र, काल गणना, खगोल विज्ञान, स्थापत्य शास्त्र, रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, कृषि

## विज्ञान, प्राणी विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, ध्वनि तथा वाणी विज्ञान, लिपि विज्ञान और सैद्धांतिक विज्ञान-पश्चिम और भारत का चिंतन।

पुस्तक के प्रथम तीन अध्यायों में भारत के अतीत के गौरव का उल्लेख किया गया है साथ ही इस बात की चिंता भी व्यक्त की गई कि हम वर्तमान में अतीत के गौरवशाली पलों को विस्मृत कैसे कर गये? भारत की वैज्ञानिक चिंतन दृष्टि को पश्चिम की वैज्ञानिक चिंतन से भिन्न बताते हुए कहा गया है की परा अपरा, निःश्रेयस और अपवर्ग और स्थूल-मूक्षम के ज्ञान को हमारे द्वारा एक साथ एकीकृत रूप में देखा गया है। जबकि पश्चिम की दृष्टि केवल स्थूल जड़ जगत तक सीमित करके देखती है। इसके अतिरिक्त भारत को प्रायः विमर्श, तर्क, वाद विवाद और शास्त्रार्थ के माध्यम से अपने विचारों को रखने और विपक्ष को सुनने एवं सहमति और असहमति का पूरा अवसर दिये जाने के तार्किक चिंतन की परंपरा वाले देश के रूप में जाना जाता है, जो की वैज्ञानिक दृष्टि का ही हिस्सा है। इस संबंध में न्याय दर्शन को प्रमाणशास्त्र के रूप में विकसित किया गया है। किंतु, भारत में प्रयोग करके सीखने और सिद्ध करने की भी परंपरा रही है जो वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा है। रसायन शास्त्र की दो पुस्तकों रसेंद्र चिंतामणि और रसप्रकाश सुधाकर के माध्यम से यह बताया गया है की प्रयोगों से सिद्ध होने पर ही किसी तत्त्व या समस्या के समाधान या सिद्धांत को स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार तर्क और प्रयोग दोनों की ही परंपरा भारत में समृद्ध रहा है। भारत की कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियों के विवेचन इस प्रकार है-

(I) विद्युत शोध की दिशा में लेखक अगस्त संहिता नामक पुस्तक के कुछ सूत्रों का उद्धरण देकर सेल निर्माण की विधि को बताया गया है ऋषि अगस्त ने इस पुस्तक में मिट्टी के एक पात्र में ताम्र पट्टिका (Copper Sheet), गीली काष्ठ पांशु (Wet saw dust), पारा (Mercury), दस्त लोह (Zinc) और शिखिग्रीवा अर्थात् कापर सल्फेट डालने पर फिर तारों को मिलाने पर मित्रवरुण शक्ति अर्थात् विद्युत उत्पन्न होगी। इसका प्रयोग 7 अगस्त 1990 को स्वदेशी विज्ञान संशोधन संस्था, नागपुर के चौथे वार्षिक सर्वसाधारण सभा में विद्वानों द्वारा किया गया। एक अन्य सूत्र का उल्लेख करते हुए कहते हैं की सौ कुम्भों की शक्ति का पानी पर प्रयोग करने पर पानी अपना रूप बदलकर प्राण वायु (Oxygen) और उदान वायु (Hydrogen) में परिवर्तित हो जायेगा। राव साहब वझे जिन्होंने भारतीय वैज्ञानिक प्रथों और प्रयोगों पर काम किया है, के अनुसार अगस्त संहिता एवं अन्य ग्रंथों में विद्युत के भिन्न भिन्न प्रकारों के नामों दिये गये हैं- तडित-रेशमी वस्त्रों के घर्षण से उत्पन्न, सौदामिनी-रत्नों के घर्षण से उत्पन्न, विद्युत-बादलों के घर्षण से उत्पन्न, शतकुंभी-सौ सेलों या कुंभों से उत्पन्न, हृदि-हृद या स्टोर की हुई विद्युत, अशनि-चुंबकीय दंड से उत्पन्न। इतना ही नहीं बैटरी द्वारा सोना, चाँदी और ताँबे के पालिश की विधि का भी उल्लेख मिलता है, जिसे सत्कृति कहा जाता है।

अगस्त संहिता एवं अन्य उपलब्ध ग्रंथों में भले ही आज की तरह विद्युत ऊर्जा को बल्व, ट्यूब लाईट, पंखा, मोटर, मशीन आदि में प्रकाश, ऊष्मा एवं यांत्रिकीय ऊर्जा आदि में बदलने की विधि का उल्लेख न हो किंतु एक बात तो तय है भारतीय ऋषि इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। यह भी संभव है की भविष्य में कोई ऐसा ग्रंथ मिल जाये जिसमें उक्त चीजों की पुष्टि भी हो। हमें इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है।

(II) यांत्रिकीय एवं यंत्र विज्ञान पर चर्चा करते हुए आपने महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन के संदर्भ में डॉ एन जी डॉंगरे की पुस्तक 'द

फ़िज़िक्स' में वर्णित न्यूटन के गति के नियमों की तुलना वैशेषिक दर्शन के कर्म के संप्रत्यय से तुलना को दिखाकर यह बतलाने का प्रयास किया गया है की प्रशस्तपाद भाष्य में उल्लिखित वेग संस्कार की समानता न्यूटन के गति के तीनों नियमों से की जा सकती है जो न्यूटन के बहुत पहले विद्यमान थी। इसी प्रकार उदयन की 'न्याय कारिकावली' में वर्णित अदृश्य बल को किसी ठोस या अन्य द्रव्य के स्पंदन का कारण मानने से द्रव्य की इलास्टिसिटी के गुण की व्याख्या हो जाती है। शैव दर्शन की परंपरा में भृङ्ग कल्लट की 'स्पंदकारिका' में 'स्पन्दन' की तुलना भी की जा सकती है। आगे भास्कराचार्य का ग्रंथ 'सिद्धांत शिरोमणि' एवं राजा भोज की प्रसिद्ध कृति 'समरांगण सूत्र' में यंत्रशास्त्र की चर्चा विस्तार से आती है। इस ग्रंथ के इक्तिसर्वे अध्याय में तो जल धारा के वेग और भार के आधार पर शक्ति उत्पन्न होने की बात कि गई है जो आधुनिक हाइड्रोलिक मशीन अर्थात् टर्बाइन से मेल खाती है। 'यंत्रार्णव' नामक ग्रंथ में वर्णित यंत्रों के साधन एवं कार्य का यहाँ उल्लेख समीचीन होगा। इस ग्रंथ में एक सूत्र में दंड, चक्र, दंत, सरणी और भ्रमण का अर्थ क्रमशः अंग्रेजी के Lever, Pulley, Toothed Wheel, Inclined Plane and Screw के अर्थ से समानता स्थापित करती है, जो किसी भी यंत्र में अनिवार्य कार्य के रूप में अर्थ को प्रकट करता है। इसी सूत्र में बीज, कीलक और शक्ति को यंत्र के तीन अनिवार्य भाग बताये गये हैं। बीज जो यंत्र की क्रिया को उत्पन्न करता है, कीलक जो यंत्र के उस बिंदु को बताता है जहाँ शक्ति और कार्य आपस में मिलते हैं और शक्ति जो कार्य की क्षमता को प्रकट करता है। इस प्रकार भारत में यंत्रशास्त्र पर पर्याप्त कार्य हुए है जिसे गंभीरता से समझने की आवश्यकता है।

(III) लेखक ने भारत के धातु विज्ञान और तकनीक पर पर्याप्त सामग्री जुटाये हैं। जस्ता, ताँबा, लोहा, काँसा, पारा, शीशा, सोना और चाँदी जैसे धातुओं को खदान एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त करने, इन्हें शुद्ध करने, आवश्यकता अनुसार धातुओं को वस्तुओं के रूप में रूपांतरित करने की विधियों का और औषधि के रूप में इनके प्रयोग करने का ज्ञान सदियों से रहा है। दिल्ली के कुतुबमीनार का लौह स्तंभ बिना किसी जंग के वर्षों से शुद्ध लोहे के रूप में रहना लोगों को चकित करता है। सत्रहवीं सदी तक यूरोप पारा से अनभिज्ञ था लेकिन भारत सदियों से न केवल औषधियों के रूप में इसका प्रयोग करता रहा है बल्कि पारा से सोना बनाने की चर्चा का उल्लेख शास्त्रों में उपलब्ध है। यह उल्लेखनीय तथ्य है की पारा की परमाणु संख्या 80 एवं परमाणु भार 200.592 यूनिट है और सोने की परमाणु संख्या 79 एवं परमाणु भार 196.966569 यूनिट है जो की सर्वाधिक निकट है। यदि किसी प्रक्रिया से पारा के एक परमाणु संख्या को कम कर दिया जाये तो वह सोने में रूपांतरित हो सकता है। सैद्धांतिक रूप से यह संभव है। प्रसिद्ध रसायनज्ञ नागार्जुन इस विधि को जानते थे, जिसका उल्लेख प्राचीन रसायन शास्त्र की पुस्तकों में उपलब्ध है। अलबरूनी ने इस तथ्य की पुष्टि भी की है।

सोने और चाँदी को भस्म बनाकर औषधि के रूप में प्रयोग करने की विधि का प्रयोग आयुर्वेद के ग्रंथों में उपलब्ध है, यह सर्वविदित तथ्य है। शुद्ध जस्ता को प्राप्त करना एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि अधिक ताप पर यह उड़ जाता है लेकिन तेरहवीं सदी के 'रसरत्नसमुच्चय' नामक पुस्तक में इस विधि का उल्लेख है। इसी प्रकार लोहा से इस्पात बनाना भी आसान नहीं। उसके लिए उच्च कोटि की भट्टी होना आवश्यक है। लेखक ने धर्मपाल की पुस्तक 'अठारहवीं सदी में भारतीय विज्ञान और तकनीक' की पुस्तक के हवाले से यह बताया है की भारत में बड़ी संख्या में इस्पात बनाने की भट्टियाँ पायी जाती रही हैं। रामायण, महाभारत काल से उच्चकोटि के तलवार आदि औजार बनाने की कला प्रसिद्ध है ही। इतना ही नहीं केरल में धातुओं से

दर्पण बनाने की प्रथा का उल्लेख भी मिलता है। एक समुदाय है जो यही काम करता है। **रसतरंगणी, सरत्नसमुच्चय, रसायनसार, शुक्र नीति, मनुस्मृति, आश्वलायन गृहसूत्र, अथर्ववेद, ऋग्वेद** आदि ग्रंथों में धातु विज्ञान और इसकी तकनीक का वर्णन उपलब्ध है।

(IV) **विमान विद्या** नामक अध्याय भारत की वैज्ञानिक परंपरा का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है। विमान शास्त्र के क्षेत्र में केवल एक नाम **महर्षि भरद्वाज** द्वारा दी गई सामग्री हमारी आंखों में चमक उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। भरद्वाज द्वारा लिखित **‘यंत्र सर्वस्व’** नामक ग्रंथ विमान संबंधी जानकारी पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। यद्यपि यह ग्रंथ पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है किंतु, इसके एक भाग के रूप में **वैमानिक शास्त्र** आंशिक रूप में उपलब्ध है। ग्रंथ वस्तुतः आठ अध्यायों में तथा सौ अधिकरण में विभक्त है और कुल पाँच सौ सूत्र है। **विमान वह** है जो पृथ्वी, जल, आकाश में पक्षी की तरह उड़ सके और आकाश मार्ग से एक देश से दूसरे देश या एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक उड़ सके। इस ग्रंथ में विमान चलाने वाले को अर्थात् पायलट को **रहस्य अधिकारी** कहा गया है। विमान कैसे चलाना है, रखरखाव कैसे करना है, दिशाओं को कैसे पहचानना है आदि प्रश्नों से संबंधित जानकारी के उत्तर में **बत्तीस प्रकार के रहस्य** बताये गये हैं। उनमें से कुछ हैं- **कृतक रहस्य, गूढ़ रहस्य, अपरोक्ष रहस्य, संकोचा, विस्तृता, सर्पागमन रहस्य, परशब्द ग्राहक रहस्य, रूपाकर्षण रहस्य, दिक् प्रदर्शन रहस्य, स्तब्धक रहस्य, कर्षण रहस्य** आदि हैं। विमानशास्त्र में इक्तीस प्रकार के यंत्र तथा उनका विमान में निश्चित स्थानों का वर्णन मिलता है। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं- **विश्व क्रिया दर्पण, परिवेश क्रिया यंत्र, शब्दाकर्षण यंत्र, गुह गर्भ यंत्र, शक्त्याकर्षण यंत्र, दिशा दर्शी यंत्र, वक्र प्रसारण यंत्र, अपस्मार यंत्र, तमोगर्भ यंत्र आदि।** विमान को चलाने के लिए चार प्रकार के ऊर्जा स्रोत का वर्णन मिलता है- (I) **वनस्पति तेल-** इसमें लगभग सौ वनस्पतियों के नाम दिये गये हैं जो आज के पेट्रोल की भाँति **कार्य करने में सक्षम है (II) पारे की भाप (III) सौर ऊर्जा (IV) वातावरण की ऊर्जा।** प्रश्न यह है की विमान किस धातु से बनते थे। इस संबंध में उक्त ग्रंथ में मिश्र धातुओं का वर्णन आता है। **तमोगर्भ लौह** जो विमान को अदृश्य करने अर्थात् प्रकाश को अवशोषित करने में सक्षम, **पंच लौह** से युक्त स्वर्ण जैसा चमक, कठोर और भारी धातु तथा **आरर मिश्र धातु** है जो ताँबा आधारित धातु जो पीली, कठोर और भारी होती है। संभवतः इन्हीं किन्हीं धातुओं से मिलकर विमान बनता रहा होगा।

विमान शास्त्र में भरद्वाज ने पच्चीस ग्रंथों के नाम और अनेक आचार्यों के नाम भी गिनाए हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करता है की विमान शास्त्र पर भरद्वाज का ज्ञान कोई आकस्मिक या चमत्कार से उपजा ज्ञान नहीं अपितु इस ज्ञान की लंबी परंपरा है जो पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित हुई है। कुछ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं- **अगस्त कृत शक्तिसूत्र, ईश्वर कृत-सौदामिनी कला, भरद्वाज कृत-अंशुबोधनी, यंत्र सर्वस्व तथा आकाश शास्त्र, शाकटायन कृत-वायुतत्व प्रकरण, नारद कृत-वैश्वानर तंत्र, धूम प्रकरण, नारायण कृत-विमान चंद्रिका, शौनक कृत-व्योमयान तंत्र, गर्ग कृत-यंत्र कल्प, वाचस्पति कृत-यान बिंदु, चाक्रा याणि कृत-खेटयान प्रदीपका, धुण्डीनाथ कृत-व्योमयानक प्रकाश आदि।**

**नौका शास्त्र** के तहत भारत में प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक नाव एवं जहाज का निर्माण होता रहा है। रामायण काल में राम का सरयू नदी से पार लगाने का काम केवट के नाव द्वारा ही गया था। इसी प्रकार लंका चढ़ाई के समय भी समुद्री जहाज और नावों का उपयोग अवश्य हुआ

होगा। दक्षिण भारत का मालाबार तट से मसालों और बहुमूल्य रत्नों का व्यापार बड़े पैमाने पर होता रहा है, जो बिना जहाज और नौका निर्माण के संभव नहीं है। इस बात का जिक्र बौद्ध भिक्षु चमनलाल ने अपनी पुस्तक **‘हिंदू अमेरिका’** में किया है। जहाजों का उल्लेख **वेद, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, पुराण** आदि ग्रंथों में मिलता है। **‘युक्ति कल्पतरु’** नामक ग्रंथ में नौकाओं के प्रकार, बनाने की विधि, उनका नाम आदि का विश्लेषण किया गया है। भारतीय जहाज शीशम, साल और सागौन से बनने की वजह से बहुत ही मजबूत, सुंदर, पंद्रह सौ टन से अधिक भार वाले होते थे। पहली बार जब अंग्रेज और विदेशियों ने जब इसे देखा तो आश्चर्य चकित हो गये थे। बाद में अपने कुटिल चालों और षड्यंत्रों से भारत की इस कला और तकनीक को बहुत नुकसान पहुँचाया गया है। वास्कोडिगामा की भारत की खोज की वास्तविकता यह है की वास्कोडिगामा अफ्रीका से एक **चंदन नामक गुजराती व्यापारी** के जहाज का अनुसरण करते हुए भारत आया था, न की कोई खोज हुई है। इस तथ्य का खुलासा **डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर** ने वास्कोडिगामा की डायरी पढ़ पर हुई।

भारत प्राचीन काल से ही **वस्त्र उद्योग** के मामले में बहुत ही विकसित अवस्था में था। **ऋषि गृत्स्मद** को कपास से सूत और सूत से वस्त्र बनाने का श्रेय दिया जाता है। भारत का वस्त्र उद्योग अंग्रेजों के आने के पूर्व पूरी दुनियाँ में प्रसिद्ध था। यहाँ का **सूती, खादी, रेशम, ऊनी, मलमल आदि के बने हुए वस्त्र हल्का, सुंदर, पारदर्शी, चिकना और इतने कलात्मक** होते थे जो विश्व में न केवल अतुलनीय बल्कि चकित कर देने वाले होते थे। एक अंगूठी से पूरा थान का कपड़ा ही निकाल दिया जाता था। अरब और यूरोपियन इसके दीवाने थे। किंतु, बाद में अंग्रेजों ने अपनी व्यावसायिक हितों की वजहों और राजनीतिक कुटिलता से भारत की महान उद्योग परंपरा को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। जिसे भारतीयों को समझना होगा।

(V) विज्ञान की भाषा और आधार **गणित** होती है। गणित के बिना विज्ञान की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यह सर्व विदित तथ्य है की गणित के क्षेत्र में भारत का विश्व में योगदान अप्रतिम रहा है। **शून्य, अनंत, पाई का मान, दशमलव, कलन, प्रमेय, अंक गणित, रेखा गणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति** आदि के क्षेत्र में उपलब्धियाँ अविस्मरणीय हैं। पश्चिम जब दस हजार अर्थात् से **10 पर 4 की घात** की संख्या तक ही जानता था तब भारत जैन ग्रंथ **‘अनुयोगद्वार’** के अनुसार **असंख्येय अर्थात् 10 पर 140 की घात** तक की संख्या को जानता था। आज जिसे **एक ट्रिलियन** कहा जाता है, जिसमें बारह शून्य होते हैं। भारत में इसे **परार्ध** कहा जाता था। बारहवीं सदी में भास्कराचार्य द्वारा लिखित **‘सिद्धांत शिरोमणि’** में शून्य और अनंत की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं। इस ग्रंथ के चार भाग हैं- **लीलावती, बीजगणित, गोलाध्याय और ग्रह गणित।** ईसा से 800 वर्ष पूर्व **बोधायन और आपस्तम्ब** ने यज्ञ की वेदियाँ बनाने में ज्यामितीय आकारों का सहारा लिया जाता था। इन विधियों को **शुल्ब सूत्रों** में बताया गया है। इसी सूत्र में बोधायन ने कहा है की **‘किसी आयत का कर्ण क्षेत्रफल में उतना ही होता है, उसकी लंबाई और चौड़ाई में होता है।’** इसे आजकल पायथागोरस का प्रमेय के नाम से जाना जाता है, जबकि श्रेय **बोधायन** को दिया जाना चाहिये। **आर्यभट्ट** ने त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र दिया था और पाई का मान भी निकाला था। भास्कराचार्य ने किसी ग्रह की गति को निकालने में **न्यूटन और लाइबनिट्ज** के बहुत पहले ही **कैल्कुलस** की खोज कर लिया था। **पुरी के शंकराचार्य भारती तीर्थ ने 16 मुख्य और 13 उपसूत्र** देकर वैदिक गणित को अत्यंत सरल और आनंददायक बनाकर गणित के सभी सवालियों के हल करने में महती भूमिका

अदा की है। इस प्रकार आपस्तम्ब, बोधायन, कात्यायन, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट जैसे प्राचीन गणितज्ञों ने अपने कार्यों से गणित को समृद्ध किया है। लेखक से इन सब पर विस्तार से विवेचन किया है।

गणित के साथ ही दिक् और काल की अवधारणा का विश्लेषण भी आवश्यक है। काल एक अमूर्त तत्त्व है जिसका बोध भौतिक वस्तुओं की घटनाओं से होता है। स्टीफन हॉकिंस ने अपनी पुस्तक 'ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में काल की उत्पत्ति को सृष्टि की उत्पत्ति से ही माना है। यही धारणा भारत की भी है। भारत भी सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही काल की भी उत्पत्ति मानता है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि काल की सबसे न्यूनतम इकाई परमाणु और अधिकतम इकाई ब्रह्मा को केवल भारत के पंचांग में बताया गया है। यह काल गणना ब्रह्मांडीय है जो दुनियाँ में कही अन्यत्र नहीं बताया गया है। महामुनि शुकदेव के अनुसार परमाणु, अणु, त्रसरेणु, त्रुटि, वेध, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु, नाडिका, मुहूर्त, दिन-रात या अहोरात्र, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और वर्ष पृथ्वी के काल गणना की इकाईयाँ हैं। एक परमाणु एक सेकंड का 37968 वाँ हिस्सा होता है। इसके आगे ब्रह्मांड में होने वाले परिवर्तनों को मापने के लिए बड़ी इकाईयों की आवश्यकता होती है, जिसे युग कहा जाता है। कलियुग (432000 वर्ष), द्वापरयुग, त्रेतायुग और सतयुग ये चार युग हैं। इनकी आयु कलियुग से क्रमशः दुगना होती जाती है। एक चतुर्युग की आयु 4320000 वर्ष होती है। ऐसे ही इकहत्तर चतुर्युग का एक मन्वन्तर और चौदह मन्वन्तर एवं पंद्रह संध्यायंश का एक कल्प अर्थात् 432000000 वर्ष होता है। एक कल्प ब्रह्मा का एक दिन और उतना ही एक रात होती है। इस प्रकार सौ वर्ष ब्रह्मा का विष्णु के एक निमेष अर्थात् आँख की पालक झपकने के बराबर होता है। विष्णु के बाद रुद्र का काल है जो स्वयं कालरूप और अनंत है। इन काल इकाईयों का वर्तमान काल बोध हमारे दैनिक जीवन में बना रहे, इसके लिए ऋषियों ने संकल्प लेने की प्रथा को जन्म दिया जो पूजा के अवसर पर प्रायः लिया जाता है।

काल का ज्ञान ग्रहों की गति के ज्ञान से तय होती है। ग्रहों की गति अर्थात् खगोल के ज्ञान के लिए यंत्रों के माध्यम से निरीक्षण करने की पद्धति भी यहाँ रही है। खगोलविद आर्यभट्ट ने आज से पंद्रह सौ वर्ष पूर्व पाटिलपुर में वेधशाला के माध्यम से अध्ययन किया करते थे। जयपुर, उज्जैन, दिल्ली, वाराणसी आदि जगहों में भी इस तरह की वेधशालाएँ थीं। भास्कराचार्य अपने ग्रंथ 'सिद्धांत शिरोमणि' में ग्रहों के अध्ययन हेतु उपयुक्त विभिन्न प्रकार के यंत्रों के नाम गिनाते हैं- नाडीवल्य यंत्र, यष्टि यंत्र, घटी यंत्र, चक्र यंत्र, शंकु यंत्र, चाप, तुर्य, फलक आदि। लेखक ने धर्मपाल जी की पुस्तक 'इण्डियन साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी इन दी ऐतीथ सेंचुरी' में उद्धृत खगोलज्ञ जॉन प्लेफेयर के एक लेख "रिमाक्स ऑन द एस्ट्रोनॉमी ऑफ द ब्राह्मिंस" के माध्यम से कहा है कि भारत पिछले छ हजार वर्ष से पूर्व से यंत्रों के माध्यम से खगोल शास्त्र का अध्ययन करता रहा है। इसके चौकाने वाले निष्कर्ष रहे हैं। इनकी खोज आज के भौतिकशास्त्र के सभी मान्य सिद्धांत से मिलती जुलती रही है या यँ कहेँ आधुनिक भौतिकशास्त्र के सभी सिद्धांतों की खोज भारत में बहुत पहले ही खोज ली गई थी। जैसे की प्रकाश की गति, गुरुत्वाकर्षण, पृथ्वी गोल एवं गतिशील है, सूर्योदय-चंद्रयोदय, चंद्र-सूर्य ग्रहण, विभिन्न ग्रहों की दूरी और गति तथा ब्रह्मांड की विस्तार आदि। इस संबंध में श्रीमद् भागवत पुराण में राजा परीक्षित के प्रश्नों के उत्तर में शुकदेव का कथन, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट आदि ऋषि-वैज्ञानिकों के कार्यों का विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है।

दिक् का ज्ञान भी वस्तुओं के होने से प्रतीत होती है। ज्यामिति की विभिन्न आकृतियाँ जो वस्तुओं की विभिन्न संरचनाओं में अभिव्यक्त होकर वास्तु या स्थापत्य का रूप ग्रहण कर लेती है। भारत में भी स्थापत्यशास्त्र के विकास की कहानी भी हजारों वर्षों की कहानी है। नगर रचना, भवन, मंदिर, क़िला, राजमहल, मूर्तियाँ, चित्रकला आदि सब कुछ इस शास्त्र के तहत आता है। इसे शिल्प कला भी कहा जाता है। विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, काश्यप शिल्प, भृगु संहिता, अग्नि पुराण, अपराजित पृच्छ, अपराजित वास्तुशास्त्र, मानसारा, समरांगण सूत्रधार आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनके आधार पर कुछ प्रसिद्ध शिल्पों का उल्लेख इस प्रकार है- कोणार्क का सूर्य मंदिर, एलिफेंटा की गुफा, लिंगराज मंदिर, खजुराहो का मंदिर, रामेश्वरम मंदिर, मद्रै का मीनाक्षी मंदिर, अजंता की गुफा, दक्षिण में विजय काल साम्राज्य के काल में बना विट्ठल मंदिर जिनके स्तंभों से संगीत निकलते हैं, आदि अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जो स्थापत्य कला की भव्यता को प्रकट करते हैं। इसके अलावा जल संरक्षण प्रबंधन, नहर, बावली, बांध, सार्वजनिक स्नान घर आदि ऐसी संरचनायें हैं जो सिंधु घाटी की खुदाई में मोहन जोदड़ो जैसे विकसित नगर सभ्यता में दिखाई देते हैं। प्राचीन काल में रावण की सोने की लंका को भी उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

(VI) देश में रसायन शास्त्र के विकास की भी उज्ज्वल परम्परा रही है। प्रफुल्ल चंद्र राय की पुस्तक 'हिंदू केमिस्ट्री' भारतीय रसायनशास्त्र की उपलब्धियों को प्रकाश में लाती है। रसायनशास्त्र मूलतः प्रयोगात्मक होने से इसके के माध्यम से खनिजों, पौधों, कृषिधान्य आदि के द्वारा विविध वस्तुओं का उत्पादन, धातुओं का निर्माण व परिवर्तन तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से औषधियों का निर्माण आदि किया जाता है। रस रत्न समुच्चय नामक ग्रंथ में अनेक रसों के नाम मिलते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं- महारस (अभ्रम, वैक्रांत, भाषिक, विमला, शिलाजतु, सास्यक, चपला रसक), उपरस (गंधक, गैरिक, काशिस, सुवरि, लालक, मनःशिला, अंजन, कंकुस्ट), सामान्य रस (कोयिला, गौरी पाषाण, नवसार, वराटक, अग्निजार, लाजवर्त, गिरि सिंदूर, हिंगुल, मुर्दाड श्रृंगकम), रत्न, धातु, विष, क्षार, अम्ल, लवण, लौहभस्म। इसी ग्रंथ में रसशाला अर्थात् प्रयोगशाला का विस्तार से वर्णन मिलता है, जिसमें बत्ती से अधिक यंत्रों के उपयोग का वर्णन है-इनमें से मुख्य हैं- दोल यंत्र, स्वेदनी यंत्र, पाटन यंत्र, अधस्पन्दन यंत्र, देकी यंत्र, बालुक यंत्र, तिर्यक पाटन यंत्र, विद्याधर यंत्र, धूप यंत्र, कोष्ठी यंत्र, कच्छप यंत्र, डमरू यंत्र। इन प्रयोगशालाओं में पारे से सोने को बनाना, धातुओं को मारने अर्थात् रूपांतरित करने की विधि का उपयोग किया जाता था। धातुओं को जंगरोधी बनाना, दिल्ली का लौह स्तंभ इस बात का प्रमाण है। औषधि हेतु विभिन्न प्रकार के भस्म बनाना, धातुओं से यौगिक बनाना जैसी क्रिया प्रसिद्ध थी। इसी प्रकार गंध, इत्र, सुगंधी आदि के सामान भी बनाये जाते थे। चरक ने नौ (धान्यासव, फ़लासव, मूलासव, सरासव, पुष्पासव, पत्रासव, काण्डसव, त्वगासव, शर्करासव) प्रकार के आसव बनाने का उल्लेख किया है। रसायन शास्त्र को विकसित करने में जिन रसायन शास्त्रियों ने उल्लेखनीय योगदान दिये हैं उनमें से प्रमुख हैं-नागार्जुन (रस रत्नाकर, कक्षपुट तंत्र, आरोग्य मंजरी, योगसार, योगाष्टक), वाग्भट्ट (रस रत्न समुच्चय), गोविंदाचार्य (रसाणव), यशोधर (रस प्रकाश सुधाकर), रामचंद्र (रसेंद्र चिंतामणि), सोमदेव (रसेंद्र चूडामणि) आदि।

(VII) लेखक ने प्राणि विज्ञान और वनस्पति शास्त्र के विषय में भी विस्तार से बताते हुए कहते हैं कि भारत में आचार्यों ने चौरासी लाख योनियों (Species) का वर्गीकरण किया है। जिसमें अमीबा से लेकर मनुष्य

योनि तक के सभी वर्ग आते हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य की चेतना अमीबा से लेकर मनुष्य योनि तक तक एक करोड़ चौवालीस लाख योनियों से गुजरी है। भारतीय दृष्टि से बृहत् विष्णु पुराण में इसका वर्गीकरण इस प्रकार किए हैं- स्थावर- बीस लाख प्रकार, जलज-नौ लाख, कूर्म-भूमि और जल दोनों जगह गति करने वाले नौ लाख, पक्षी-दस लाख, पशु- तीस लाख, वानर- चार लाख और शेष मनुष्य योनि अर्थात् दो लाख प्रकार हैं। स्थूल रूप से जलचर, थलचर और नभचर प्राणियों के तीन वर्ग हैं। इसके अतिरिक्त प्राणियों कि उत्पत्ति के आधार पर चौरासी लाख योनियों को चार प्रकार में वर्गीकृत किया गया है- जरायुज-माता के गर्भ से जन्म लेने वाले मनुष्य एवं पशु, अण्डज-अंडों से उत्पन्न होने वाले प्राणी, स्वेदज-पसीना, मल, मूत्र आदि से उत्पन्न होने वाले क्षुद्र जंतु, उदभिज- पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले प्राणी। शरीर रचना की दृष्टि से एक खुर, द्वि खुर और पंच अंगुल के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। प्राणियों के आहार-विहार के आधार पर चरक का वर्गीकरण इस प्रकार है- प्रसह, भूमिशय, अनुपदेश के पशु, वारिशय, वारिचारी, जांगल पशु, विष्कर पक्षी, प्रतुद पक्षी। चरक ने उक्त वर्गीकरण के साथ ही प्राणियों के मांस और इसके उपयोग के साथ ही वात, पित्त और कफ पर इसके प्रभाव की भी विस्तृत विवेचना की है।

वनस्पति शास्त्र के क्षेत्र में भी निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण और अन्वेषण की प्रवृत्ति रही है। अथर्व वेद में पौधों को आकृति तथा अन्य लक्षणों के आधार पर सात उपविभागों में बाँटा गया है- वृक्ष, तृण, औषधि, गुल्म, लता, अवतान और वनस्पति। भारतीय ऋषियों की यह मान्यता रही है की वृक्ष भी मनुष्यों की तरह ही विभिन्न संवेदनाओं को महसूस करते हैं अर्थात् उसमें भी चेतना होती है। महाभारत के शांति पर्व में महर्षि भरद्वाज के प्रश्न के उत्तर में महर्षि भृगु कहते हैं की वृक्ष मनुष्यों की ही तरह देखते हैं, सुनते हैं, सूंघते हैं, स्पर्श करते हैं, भोजन के रूप में जड़ों से जल ग्रहण करते हैं। इतना ही नहीं वे बीमार या रोगी होने पर अपनी जड़ों में औषधि डालकर स्वस्थ भी होते हैं। उदयन ने 'पृथ्वी निरूपणम्' ग्रंथ में कहा है की वृक्षों को भी मानव शरीर के समान जीवन, मरण, स्वप्न, जागरण, रोग, औषधि प्रयोग, बीज, सजातीय अनुबंध, अनुकूल वस्तु स्वीकार व प्रतिकूल वस्तु अस्वीकार जैसी अनुभूतियाँ होती हैं। आधुनिक युग में जगदीश चंद्र वासु का काम इस तथ्य को पुष्ट करता है।

इस दिशा में सबसे चर्चित और उल्लेखनीय ग्रंथ है पराशर कृत 'वृक्ष आयुर्वेद' है। इस ग्रंथ में बीज से वृक्ष बनने की पूरी प्रक्रिया का वैज्ञानिक विश्लेषण है। ग्रंथ के छह भाग हैं- बीजोत्पत्ति कांड, वानस्पत्य कांड, गुल्म कांड, वनस्पति कांड, विरुद्ध वल्ली कांड और चिकित्सा कांड। इसमें वृक्षों के श्वसन क्रिया, फोटो सिंथेसिस की क्रिया, रस को गुरुत्वाकर्षण के विपरीत, नीचे से ऊपर ले जाना और फिर ऊपर से नीचे लाने की प्रक्रिया, वनस्पतियों को विविध परिवारों में बाँटना आदि का विस्तार से वर्णन भी है। ऋषि चरक ने चरक संहिता में चार प्रकार का वर्गीकरण किया है- जिनमे फूल के बिना फलों की उत्पत्ति होती है जैसे कटहल, वानस्पत्य-जिनमे फूल के बाद फल लगते हैं जैसे आ, अमरूद, औषधि- जो फल पकने के बाद स्वयं सूखकर गिर पड़ें जैसे गेहूँ, जौ, चना आदि और विरुद्ध - जिनके तंतु निकलते हैं जैसे लताएँ वेल आदि। इसी प्रकार वनस्पति के प्रयोग के आधार पर कुछ वर्गीकरण है जैसे- मूलनी, फलनी, शूक धान्य, शिम्बी धान्य, शाक वर्ग, फल वर्ग, हरित वर्ग, आहार योनि वर्ग, इक्षु वर्ग। चरक और सुश्रुत ने वनस्पतियों में आनुवंशिकता का भी विवरण देते हैं। वारहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में वनस्पतियों के रोगों का भी वर्णन आता है। पाण्डु पत्रता- जो पणों की पाण्डुता है, प्रवाल अवृद्धि- कलियों का

पतन, शाखा शोष - डालियों का सूखना, रस मुक्ति- रस निःस्राव होना आदि।

कृषि विज्ञान के संदर्भ में ऋग्वेद, अथर्व वेद, नारद स्मृति, विष्णु धर्मोत्तर, अग्नि पुराण, अर्थ शास्त्र, आदि में प्रमुखता से उल्लेख मिलता है। जिसमें कृषि के सभी रूपों विभिन्न चरणों, प्रक्रियाओं और यंत्रों का विवरण मिलता है। इस संदर्भ में 'कृषि पाराशर' नामक ग्रंथ उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में मिट्टी का अध्ययन, जुताई की विधि एवं समय, बीजवपन, वर्षा के बारे में भविष्यवाणी, वर्षा मापन, उपरोपण (ग्राफ़िटिंग) आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। भारत में पंक्ति बद्ध बुवाई की विधि आधुनिक यूरोप के बहुत पहले ही प्रचलित थी। भारतीय कृषि पद्धति की विशेषताओं का उल्लेख धर्मपाल जी ने अपनी पुस्तक में किए हैं। लेखक ब्रिटेन के सर वाकर के वाक्यांश का उल्लेख करते हैं "भारत में शायद विश्व के किसी भी देश से अधिक क्रिस्मों का अनाज बोया जाता है और तरह तरह की पौष्टिक जड़ों वाली फसलों का भी यहाँ प्रचलन है। मेरी समझ में नहीं आता की हम भारत को क्या दे सकते हैं क्योंकि जो खाद्यान्न हमारे यहाँ है, वे तो यहाँ हैं ही और भी अनेक विशेष प्रकार के अन्न यहाँ हैं"

(VIII) भारत की चिकित्सा पद्धति की चर्चा के बिना भारतीय विज्ञान की उपलब्धियों की कहानी अधूरी ही रहेगी। चिकित्सा विज्ञान के विकास का इतिहास भारत में बहुत पुराना है। चरक संहिता के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद का ज्ञान दिया और उसने अश्विनी कुमारों को, अश्विनी कुमार से इंद्र को, इंद्र से धन्वंतरि को, उनसे भरद्वाज ऋषि को, उनसे आत्रेय पुनर्वास, उनसे उनके शिष्य अग्निवेश, भेल, हारीत आदि परंपरा चली आ रही है। आगे यह परंपरा दो भागों में विभाजित हो गयी। धन्वंतरि परंपरा और आत्रेय परंपरा। आत्रेय परंपरा में काय चिकित्सा की प्रधानता रहती है। इस परंपरा के प्रमुख ऋषि चरक हुए जिन्होंने 'चरक संहिता' लिखी जो अत्यंत प्रसिद्ध है। धन्वंतरि की परंपरा में शल्य चिकित्सा की प्रधानता है। इसके प्रमुख आचार्य सुश्रुत हैं, जिनकी 'सुश्रुत संहिता' अत्यंत प्रसिद्ध है। आयुर्वेद की दृष्टि में स्वास्थ्य की परिभाषा अत्यंत व्यापक और एकीकृत है। चरक ने कहा है की "जिसका त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), सप्त धातु, मल प्रवृत्ति आदि क्रियायें संतुलित अवस्था में हों, साथ ही आत्मा, इंद्रिय एवं मन प्रसन्न स्थिति में हो, वही स्वस्थ मनुष्य कहलाता है।" शरीर रचना और शरीर क्रिया का जो विवेचन दिया गया है वह भी बहुत हद तक आधुनिक चिकित्सा से मेल खाती है। किंतु रोग को देखने, परीक्षण करने और इलाज करने की दृष्टि में अंतर है। वात, पित्त और कफ का असंतुलन ही रोग का मुख्य कारण है और इसको संतुलित करना ही रोग का निदान है। आयुर्वेद में चिकित्सा की दो पद्धति हैं- शोधन और शमन। शोधन के अन्तर्गत पंचकर्म (वमन, विरेचन, बस्ति, रक्तमोक्षण, नस्य) आते हैं। इससे शरीर को शुद्ध किया जाता है। शमन के अन्तर्गत औषधि के द्वारा चिकित्सा की जाती है। यह आठ प्रकार का है- काय चिकित्सा, कौमार भृत्यम, भूत विद्या, शालाक्य तंत्र, शल्य तंत्र, अगद तंत्र, रसायन, बाजीकरण। औषधियाँ वनस्पति, प्राणी और खनिजों से तैयार की जाती हैं जो चूर्ण, आसव, काढ़ा, अवलेह, बटी आदि अनेक रूपों में तैयार होती हैं। चरक संहिता में 341 वनस्पति जन्य, 177 प्राणिजन्य, 64 खनिज द्रव्यों का उल्लेख है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में 385 वनस्पति जन्य, 57 प्राणिजन्य, 64 खनिज द्रव्यों का उल्लेख है।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी आयुर्वेद ने ऊँचाइयों को छुआ है। इसके जनक धन्वंतरि को माना जाता है। प्राचीन ग्रंथों में अनेकों ऐसे

उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ वैद्यों ने शल्य चिकित्सा के माध्यम से **आँख, कान, नाक, हाथ, पैर, त्वचा, हड्डी, मस्तिष्क** आदि शरीर के विभिन्न अंगों की गंभीर बीमारियों को ठीक किया गया है। इतना ही नहीं शल्य क्रिया के मध्यमसे दक्ष प्रजापति के काटे हुए सिर के स्थान पर **बकरे का सिर लगाना, गणेश के कटे हुए सिर के स्थान पर हाथी का सिर लगाना, आवश्यकतानुसार मनुष्य के एक आँख की जगह दूसरे की आँख लगा देना, कीड़े पड़े हुए घाव को ठीक करना** आदि शल्य चिकित्सा के अनेकों उदाहरण हैं। सुश्रुत संहिता में आठ प्रकार के शल्य क्रिया को बताया गया है- **छेद्य (छेदन हेतु), भेद्य (भेदन हेतु), लेख्य (अलग करने हेतु), वेध्य (शरीर से हानिकारक द्रव्य निकालने के लिए), ऐश्य (नाड़ी में घाव दूढ़ने के लिये), अहार्य (हानिकारक उत्पत्तियों को निकालने के लिए), विश्रव्य (द्रव्य निकालने के लिए) सीव्य (घाव सिलने के लिए)**। सुश्रुत संहिता में प्लास्टिक सर्जरी का उल्लेख भी मिलता है। कहा जाता है की एक कुम्हार के द्वारा जो घड़े बनाने के साथ साथ प्लास्टिक सर्जरी का काम भी करता था, 1792 में टीपू सुल्तान और मराठों के बीच युद्ध होने से चार मराठों के हाथ और एक गाड़ीवान के नाक कट जाने से इसी कुम्हार द्वारा शल्य चिकित्सा से हाथ और नाक लगा दी गई थी। बाद में भी ऐसे कार्य होते रहे हैं। लंदन से 1794 में प्रकाशित एक पत्रिका '**जेंटलमेन पत्रिका**' में इस सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रकाशित है। इतना ही नहीं रामायण और महाभारत में **क्लोनिंग, टीकाकरण और विशिष्ट गुण युक्त संतान** प्राप्ति की विधि का उल्लेख होने से यह सिद्ध होता है की भारत की चिकित्सा पद्धति आज की चिकित्सा पद्धति के समान न केवल विकसित थी बल्कि कई मायनों में अधिक विकसित थी, जिसे जानना और समझना आवश्यक है।

(IX) पुस्तक के लेखक ने भारतीय विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा के तहत दो अध्याय क्रमशः **ध्वनि तथा वाणी विज्ञान और लिपि विज्ञान** को भी दिये हैं, जिनकी संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है।

भारत ने **ऊँ (ओम्)** नाम के प्रतीक चिन्ह को **अ, उ, म** ध्वनि के रूप में उच्चारित किया जाता है जो अखिल ब्रह्मांड के नाद का प्रतीक चिन्ह है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही नाद की भी उत्पत्ति हो जाती है। यही नाद वाणी के रूप में चार स्तरों (**परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी**) से होकर अपना मूर्त रूप ग्रहण करती है। ध्वनि शरीर के पाँच स्थानों **कंठव्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंतीय, ओष्ठ्य** और वायु की मदद से उच्चरित होकर **स्वर** और व्यंजन का रूप ग्रहण करती हुई वर्ण और शब्दों को आकार प्रदान करती है। वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्य से भाषा का निर्माण होता है। कम से कम संस्कृत भाषा का यही विकास क्रम है। संगीत के **सात स्वर और चौदह माहेश्वर सूत्र** का विकास भी नाद से ही होता है। भारत की संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता का आधार यही है की जैसी बोली जाती है वैसी ही लिखी जाती है। संस्कृत व्याकरण के रूप में पाणिनि की '**अष्टाध्यायी**' की प्रशंसा विश्व के सभी विद्वानों द्वारा मुक्त कंठ से की गयी है। संगीत शास्त्र और कला की परंपरा को भी विश्व में बहुत ही सम्मान के साथ याद किया जाता है।

लेखक ने भारतीय **पुरातत्वविद् और लिपि विशेषज्ञ अ. व. वालावलकर तथा ल. श्री. वाकणकर** के अकाट्य प्रमाणों के माध्यम से यह उत्तर देने की कोशिश की है की पश्चिमी विद्वानों द्वारा जो यह कहा जाता रहा है की भारत में लेखन कला और ब्राह्मी लिपि भारत से बाहर ग्रीक से आयी है, निराधार और पक्षपात पूर्ण है। सच यह है की ब्राह्मी लिपि से बहुत पहले **माहेश्वर लिपि** भारत में विद्यमान थी। उसी से ब्राह्मी और देवनागरी

विकसित हुई है। महाभारत के लेखक **गणेश जो व्यास** के द्वारा लिखाया गया था, इस तथ्य को पुष्ट करता है।

(X) सबसे अंत में लेखक के द्वारा **पश्चिमी विज्ञान की दृष्टि और भारत की विज्ञान की दृष्टि** अर्थात् विज्ञान दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और निष्कर्ष के रूप में यह स्थापित करने की कोशिश की गई की भारत की दृष्टि एकात्म, पूर्ण और व्यापक है जिसमें **भौतिकवाद और आध्यात्मिकता** का समन्वय है। और यही दृष्टि विश्व और मानव को मार्ग दिखायेगी। सर्वप्रथम पश्चिमी विज्ञान के इतिहास पर प्रकाश डालते कहते हैं बताते हुए कहते हैं की ग्रीक दार्शनिक विश्व की व्याख्या **पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि तत्व** से करते हैं। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में **न्यूटन, गैलीलियो, बेकन, लॉक, डेकार्ट** ने आधुनिक विज्ञान की नींव रखने वाले दार्शनिक वैज्ञानिक हैं। न्यूटन के गति के नियम, गुरुत्वाकर्षण का नियम, ब्रह्मांड को गणितीय मशीन के रूप में व्याख्या करना, कैलकुलस की खोज, गैलीलियो के द्वारा प्रयोग और परीक्षण की पद्धति अपनाना और पृथ्वी को गतिशील बताना, डेकार्ट द्वारा संदेह की विधि देना और समस्या को विभाजित कर पुनः तार्किक रूप से एक करना अर्थात् विश्लेषण और संश्लेषण की विधि बताना और लॉक के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभव को ज्ञान का प्रमाण बताना और भौतिक जगत की व्याख्या परमाणु सिद्धांत के आधार पर करना आदि ये सभी सिद्धांत **क्लासिकल भौतिक शास्त्र** की नींव रखने में आधार प्रदान किए। आगे चलकर उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी की शुरुआत में **क्वांटम फ़िज़िक्स और सापेक्षता का सिद्धांत** ने भौतिक जगत की नयी व्याख्या लेकर आयी जो क्लासिकल फ़िज़िक्स की धारणा के विपरीत था। जहाँ एक ओर क्लासिकल फ़िज़िक्स की मान्यताएँ स्थूल जगत में कार्य कारण सिद्धांत के आधार पर लागू होती हैं तो दूसरी ओर क्वांटम फ़िज़िक्स की मान्यतायें संभाव्यता के आधार पर सूक्ष्म जगत में लागू होती हैं। दोनों ही दृष्टियाँ सही होते हुए भी भौतिक जगत के अलग अलग क्षेत्रों में कार्य करती हैं। किंतु, यहाँ मूलभूत प्रश्न यह उठता है की एक ही जगत को समझने में दो विपरीत नियम कैसे काम कर सकती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में दोनों ही नियमों के एकीकरण या समन्वय की दृष्टि पर कार्य किये जाने लगा। **एकीकरण का सिद्धांत (Theory of unification)** पर कई तरह के सिद्धांत आये और अभी भी आ रहे हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **स्टीफ़न हॉकिंग्स ने थ्योरी ऑफ़ एवरी थिंग्स** जैसे सिद्धांत के माध्यम से भौतिक जगत को समझने की कोशिश की जाती रही है। किंतु, अभी भी पूर्ण संतोषजनक सिद्धांत नहीं आया है। इस संबंध में भौतिक जगत को समझने वाला तत्व **प्रेक्षक (Observer)** की भूमिका भी वास्तविकता को न केवल समझने में होती है बल्कि वास्तविकता को रचने में भी भूमिका होती है। इस बात की पुष्टि **आइंस्टीन, हायजनबर्ग, इरविन सरोडिंगर, ब्रोगली** जैसे वैज्ञानिकों ने की है। इसका अर्थ यह है की **मन, बुद्धि, अहंकार, स्वचेतना** जैसे तत्वों को भी समझना होगा किंतु तब भौतिक नियमों के आधार भी टूटने लगेंगे। यही आधुनिक विज्ञान का **विरोधाभास या पैराडॉक्स** है।

भारत की वैज्ञानिक दृष्टि इस उलझन में नहीं है और न ही उसे किसी **विरोधाभास या पैराडॉक्स** का बोध है। हम यह मानते हैं की जो तत्व भौतिक जगत को समझेगा वही तत्व **मन, बुद्धि, अहंकार और स्वचेतना** को समझेगा। इतना ही नहीं इन दोनों कोटि के तत्वों को समझने वाले तत्व को भी वह समझेगा। अर्थात् यही वह कॉमन भूमि है जहाँ **चेतना के नियम और भौतिक के नियम** आपस में मिलते हैं। इसे ही अद्वैत तत्व कहा गया है। इसीलिए भारत में भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान को परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक माना गया है। **परा-अपरा, अभ्युदय-निश्रेयस, ज्ञान-**

विज्ञान को युक्ति के रूप में यहाँ देखा जाता है। अद्वैत को भी देखने की विविध दृष्टियाँ यहाँ विकसित हुई हैं, जैसे-ब्रह्माद्वैत, शब्दाद्वैत, शून्याद्वैत, शाक्ताद्वैत और शैवाद्वैत।

यह बात ध्यातव्य है की भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अद्वैत तत्त्व तक नहीं ठहरता इसके भी आगे सृजनशीलता की दृष्टि से अनेकतत्त्व और द्वैत की भी रचना करता है, और यह प्रक्रिया अनंत काल से यँ ही चलती रहती है। जिसमें नित्य और अनित्य दोनों का संयोजन एवं व्यष्टि और समष्टि की रचना प्रक्रिया समाविष्ट है। शैवाद्वैत परंपरा में इसका विशेष विवेचन हुआ है। इसे ही सनातन अर्थात् जो सदा ही शास्वत, परिवर्तन तथा अनेकरूपता के ज्ञान से विशिष्ट है। आज विश्व को इसी दृष्टि की आवश्यकता है, जिसे केवल भारत प्रदान कर सकता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है की श्री सुरेश सोनी द्वारा रचित पुस्तक “भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा” पश्चिम और पूर्व की जीवन और जगत की दृष्टि के बीच एक सेतु का काम करेगी और भारतीय

मानस पटल पर पड़े हुए विविध जालों को साफ़ करने में मददगार साबित होगी। यह काम केवल आरंभ है इसे और आगे ले जाना है। उम्मीद है की नयी पीढ़ी इस काम को और आगे ले जायेगी। इसी संकल्प के साथ...

#### संदर्भ:

1. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा: सुरेश सोनी, साहित्य साधना ट्रस्ट, गुजरात, २०२०
2. द ब्यूटीफुल ट्री: धर्मपाल, बिबिलिया इम्पेक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली १९८३
3. अठारवीं शताब्दी में भारतीय विज्ञान और तकनीक: धर्मपाल, राष्ट्रीय साहित्य, दिल्ली २०२१
4. समरांगण सूत्रधार: राजा भोज, (संपा. डॉ प्रभाकर पी आपटे) चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, २०११
5. सुश्रुत संहिता: संपा. ब्रह्मानंद त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१५